वेदमें योगविद्या

(श्रीजगन्नाथजी वेदालङ्कार)

सभी धर्म, कर्म, योग, ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति आदि सत्कर्म वेदोंद्वारा निर्दिष्ट हैं और उनसे ही नि:सृत माने गये हैं। यहाँतक कि भविष्यमें होनेवाले ज्ञान-विज्ञान तथा कला-साहित्य आदिका भी वेदोंमें उत्स प्राप्त है—

'भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति॥'

(मनु० १२। ९७)

यहाँ संक्षेपमें योगमूलक कुछ वैदिक मन्त्रोंका निर्देश किया जा रहा है। 'योग' शब्दका अर्थ है जोड़ना अथवा युक्त करना, समाहित अथवा एकाग्र होना। अपने आत्माको परमात्माके साथ युक्त करना ही 'योग' है और जिस साधनसे इस प्रकारका योग एवं सायुज्य प्राप्त होता है, वह भी 'योग' कहलाता है। योग-भाष्यके रचयिता महर्षि व्यास कहते हैं कि पूर्ण एकाग्रतासे परमात्मामें समाहित हो जाना, समाधिकी अवस्था प्राप्त कर लेना भी योग है अर्थात् 'योग' शब्द साधन और साध्य दोनोंका वाचक है।

ऋग्वेदके एक मन्त्रमें यह शब्द इन्हीं अर्थोंमें प्रयुक्त हुआ है—

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन।
स धीनां योगमिन्वति॥

(१। १८। ७)

अर्थात् जिन (इन्द्राग्नि) देवताके बिना प्रकाशपूर्ण ज्ञानीका जीवन-यज्ञ भी सफल नहीं होता, उसीमें ज्ञानियोंको अपनी बुद्धि एवं कर्मोंका योग करना चाहिये, उसी देवमें उन्हें अपनी बुद्धि और कर्मोंको अनन्यरूपमें एकाग्र करना चाहिये। उनकी बुद्धि उस देवके साथ तदाकार हो जाती है और वह उनके कर्मोंमें भी ओतप्रोत हो जाता है।

योगके इस प्रधान लक्षणका प्रतिपादन यजुर्वेदके ११ वें अध्यायके प्रथम पाँच मन्त्रोंमें अत्यन्त स्पष्ट और सरल शब्दोंमें किया गया है। कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

वेद-कथाङ्क (कल्याण-गीताप्रेस)

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याऽभरत्॥

सबको उत्पन्न करनेवाले परमात्मा पहले हमारे मन और बुद्धिकी वृत्तियोंको तत्त्वकी प्राप्तिके लिये अपने दिव्य स्वरूपमें लगायें तथा अग्नि आदि इन्द्रियाभिमानी देवताओंकी; जो विषयोंको प्रकाशित करनेकी सामर्थ्य है, उसे दृष्टिमें रखते हुए बाह्य विषयोंसे लौटाकर हमारी इन्द्रियोंमें स्थिरतापूर्वक स्थापित कर दें; जिससे हमारी इन्द्रियोंका प्रकाश बाहर न जाकर बुद्धि और मनकी स्थिरतामें सहायक हो।

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे।
स्वर्ग्याय शक्त्या॥

हम लोग सबको उत्पन्न करनेवाले परमदेव परमेश्वरकी आराधनारूप यज्ञमें लगे हुए मनके द्वारा परमानन्दकी प्राप्तिके लिये पूर्ण शक्तिसे प्रयत्न करें अर्थात् हमारा मन निरन्तर भगवान्‌की आराधनामें लगा रहे और हम भगवत्प्राप्तिजनित अनुभूतिके लिये पूर्णशक्तिसे प्रयत्नशील रहें।

युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम्।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्र सुवाति तान्॥

वे सबको उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर मन और इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवताओंको; जो स्वर्ग आदि लोकोंमें एवं आकाशमें विचरनेवाले तथा बड़ा भारी प्रकाश फैलानेवाले हैं। हमारे मन और बुद्धिसे संयुक्त करके हमें प्रकाश प्रदान करनेके लिये प्रेरणा करें, ताकि हम उन परमेश्वरका साक्षात् करनेके लिये प्रकाश फैलाते रहें। निद्रा, आलस्य और अकर्मण्यता आदि दोष हमारे ध्यानमें विघ्न न करें।

इसी प्रकार ऋग्वेद (१। ८६। ९-१०)-में कहा गया है—

यूयं तत् सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना।
विध्यता विद्युता रक्षः॥
गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम्।
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि॥

—इन मन्त्रोंमें गौतम ऋषि मरुत्-देवताओंका आवाहन कर उनसे ज्योतिप्राप्तिकी प्रार्थना करते हैं—'हे सत्यके बलसे सम्पन्न मरुतो! तुम्हारी महिमासे वह परमतत्त्व हमारे सामने प्रकाशित हो गया। विद्युत्‌के सदृश अपने प्रकाशसे राक्षसका विनाश कर डालो। हृदय-गुहामें स्थित अन्धकारको छिन्न-भिन्न कर दो, जिससे वह अन्धकार सत्यकी ज्योतिकी नावमें डूबकर तिरोहित हो जाय। हमारी अभीष्ट ज्योतिको प्रकट कर दो।'

यहाँ मरुत्-देवताओंसे योगपरक अर्थ करनेमें पञ्चप्राण—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यानका भी ग्रहण हो सकता है। इनपर पूर्णप्रभुत्वकी प्राप्तिसे योगाभ्यासीको शक्तिके आरोहणका अनुभव और परमतत्त्वका साक्षात्कार प्राप्त होता है। साक्षात्कारसे जिस ज्योतिके दर्शन होते हैं, वही योगीका अभीष्ट ध्येय है।

अथर्ववेदके एक मन्त्रमें राजयोगकी प्राणायाम-प्रणालीसे होनेवाली शक्तिके आरोहणका वर्णन प्रतीकात्मक भाषामें किया गया है।

पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम्।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम्॥ (४। १४। ३)

—इस मन्त्रमें पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ क्रमशः अन्न, प्राण और मनकी भूमिकाओंके प्रतीक हैं तथा स्वर्ज्योति मन और वाणीसे परे स्थित, वाङ्मनस-अगोचर विज्ञानमय भूमिकाका प्रतीक है। प्राणायामसे सिद्धिप्राप्त साधक कहता है 'मैंने पृथ्वीके तलसे अन्तरिक्षके लिये आरोहण किया, अन्तरिक्षसे द्युलोकमें और आनन्दमय द्युलोकसे आरोहण करके मैं स्वर्लोकके ज्योतिर्मयधाममें पहुँच गया।' पातञ्जलयोगदर्शनके अनुसार ये भूमिकाएँ विक्षिप्त, असम्प्रज्ञात और कैवल्य कहलाती हैं।

चेतनाके उत्तरोत्तर आरोहणक्रममें योगीको जो अनुभूतियाँ होती हैं, उनका वेदोंमें अनेकत्र वर्णन किया गया है—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥

(अथर्व० १०। २। ३१)

इस मन्त्रमें यह कहा गया है कि 'आठ चक्रों और नौ द्वारोंसे युक्त हमारी यह देहपुरी एक अपराजेय देवनगरी है। इसमें एक तेजस्वी कोश है, जो ज्योति और आनन्दसे परिपूर्ण है।'

वैदिक योग-साधनाका ध्येय है आत्माका परमात्माके साथ ऐक्य। उसके लिये साधककी अभीप्सा निम्नलिखित मन्त्रमें सुन्दर ढंगसे व्यक्त की गयी है—

यदग्ने स्यामहं तवं त्वं वा घा स्या अहम्।
स्युष्टे सत्या इहाशिषः॥

(ऋक्० ८। ४४। २३)

अर्थात् 'हे अग्निदेव! यदि मैं तू हो जाऊँ अर्थात् सर्वसमृद्धिसम्पन्न हो जाऊँ या तू मैं हो जाय तो इस लोकमें तेरे सभी आशीर्वाद सत्य सिद्ध हो जायँ।'

इस प्रकार यहाँ वेदमन्त्रोंके आधारपर योग-सम्बन्धी कुछ रहस्यात्मक तत्त्व संक्षेपमें निर्दिष्ट किये गये हैं। प्राचीन या अर्वाचीन सभी योगमार्ग वेदमूलक ही हैं, जो वेदोंमें योगके कल्याणके लिये निर्दिष्ट हुए हैं। इस सूक्तके उपदेशोंके आधारपर प्राणिमात्रके प्रति मैत्रीभावना और समदृष्टिका अभ्यास करना चाहिये। यह अभ्यास सिद्ध हो जानेपर अपने हृदयके सभी भावोंको भगवान्‌की ओर ही प्रेरित करें, सभी सांसारिक सम्बन्धों और अलौकिक सम्बन्धोंको भगवान्‌के साथ ही जोड़ दें। अनेक वेदमन्त्रोंमें यह उपदेश दिया गया है कि हमें माता-पिता, पुत्र-पुत्री, मित्र, कलत्र, बन्धु-बान्धव आदि सभी सम्बन्ध अपने सच्चे और अनन्यबन्धु भगवान्‌के साथ ही जोड़ने चाहिये, संसारी जनोंके साथ नहीं। सांसारिक आसक्तियोंको दूर करने और भगवान्‌में परम अनुरक्ति तथा रति उत्पन्न करनेका इससे सरल एवं सरस मार्ग अन्य कोई नहीं है। हृदयके सभी भावों और निखिल कामनाओंको भगवान्‌की ओर मोड़ देनेसे ही उनके साथ सारूप्य, साधर्म्य, सायुज्य और ऐकात्म्य सहजतया प्राप्त हो सकता है।

[प्रेषक—श्रीबलरामजी सैनी]

वेद कथाङ्क (कल्याण-गीताप्रेस)